बी.ए.प्रथम वर्ष
----कबीर के राम----

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक, एक समाज सुधायक,एक भक्त कवि, तथा एक सच्चे मानवतावादी संत थें। ये ए

क सीधे-साधे और सच्चे साधक थें, अतः इन्होनें कोई दार्शनिक सम्प्रदाय नहीं खड़ा किया वरन तत्कालीन भारत में प्रचलित दर्शनों से जो कुछ भी उन्हें भला एवं अनुकूल प्रतीत इन्होनें उसे ग्रहण कर लिया। इन्होनें हिन्दुओं से अद्वैतवाद को ग्रहण किया तथा सूफियों के भावनात्मक रहस्यवाद के के द्वारा उसे एक नया रूप दे दिया। इन्होनें सिद्धों तथा नाथ योगियों की योग साधना तथा हठयोग को ग्रहण किया और वैष्णवो से अहिंसा तथा 'प्रपत्ति' भाव लिया। इस प्रकार कबीर ने 'सार-सार को' ग्रहण किया तथा जोकुछ भी 'थोथा' लगा उसे उड़ा दिया।

कबीर ने अपनी दार्शनिक मान्यताओं को बड़े सीधे और सहज ढंग से सरल भाषा में जनसामान्य के सम्मुख प्रस्तुत किया। चूँकि इनके सारे काव्य-कर्म का केंद्र सामान्य जनता है जो कि दार्शनिक मान्यताओं से दूर अपने दैनिक जीवन में संघर्षरत है तथा जो अशिक्षित भी है, इसलिए कबीर ने सीधी एवं सरल भाषा का प्रयोग किया है।

इनकी दार्शनिक मान्यताओं को निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत विवेचित किया जा सकता है।

*ब्रह्म -

कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की। इन्होनें निर्गुण ब्रह्म के लिए 'राम' नाम का प्रयोग किया है। ऐसा प्रसिद्ध है की ब्रह्ममुहूर्त में घात पर सोए कबीर पर रामानंद जी के पैर पड़े तो उन्होंने कहा- 'राम-राम कह'। रामानंद जी के इसी कथन को कबीर ने गुरु मंत्र मान लिया और राम की भक्ति करने लगें। परन्तु उनके राम दशरथी राम नहीं है, वे तो अगम-अगोचर और अविनाशी। स्वयं कबीर अपने राम के विषय में कहतें हैं -

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना ,

राम नाम का मरम है आना।

तथा,

कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूंढै बन माहि।

ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखत नाहीं।।

वे कहते है की राम कस्तूरी की सुगंध के सामान सुक्ष्म है और हर किसी के अंतर में उसका निवास है पर हर कई वनों और गुफाओं कर उनकी तलाश कर रहा है। राम जब प्रत्येक के अंतर में निवास करते है तो

उन्हें मंदिर,मस्जिद आदि बाहरी स्थानों में ढूंढने की क्या आवश्यकता है? राम के दर्शन तो कुण्डलिनी जागृत कर षड्चक्र भेदन भर से स्वयं के अंतर में ही संभव है।

राम का वर्णन करते-करते कभी-कभी कबीर अपने परवर्ती महाकवि तुलसीदास के सामान, या फिर यूँ कहुँ कि, तुलसीदास की भाषा का ही प्रयोग करने लगते है। तुलसीदास जी ने निर्गुण ब्रह्म के वर्णन के क्रम में लिखा है-

'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधी नाना।

कबीर ने भी लिखा है -

जाके मुँह माथा नहीं नाही रूप कुरूप

तुलसीदास ने भी निर्गुण ब्रह्म के विषय में 'नेति-नेति' लिखा है -

....अगम-निगम पुरान, नेति-नेति कह जासु गुन करहु निरंतर ध्यान।

कबीर भी इसी तरह कहते है -

हाँ कहूँ तो है नहीं, न कहूँ तो है।

है नहीं के बीच में, जो कछु है सो है॥

कबीर के राम अगम, अगोचर, अविनाशी, अरूप, अनाम,निराकार तथा निरंजन हैं। वह तेजोमय हैं, उनके अलौकिक तेज की समता करोड़ों सूर्यों का संयुक्त प्रकाश भी नहीं कर सकता है। राम लोकातीत हैं ,फिर भी लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं। 'घट-घट' में उनका निवास है तथा बहार प्रकृति में भी हर ओर उनका ही प्रतबिम्ब है। राम सबके अंदर हैं तथा सब राम के अंदर है, बिलकुल सागर में डूबे घड़े के समान-

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।

वास्तव में कबीर को निरुणोपासना अपने अनुकूल लगी जबकि गुरु रामानंद जी सगुण राम की उपासना का उपदेश दिया करते थें। इनके अपने मत और इस्लामिक संस्कारों के कारण निर्गुणोपासना इन्हे अपेक्षाकृत अधिक भाया और इस तरह कबीर के राम रामानंद के राम से भिन्न हो गए।

जीव-

कबीर मूलतः अद्वैतवादी हैं उनके अनुसार जीव का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है बल्कि वह तो उसी परमतत्व का अंश है। कोई राजा नहीं, कोई रंक नहीं, न कोई कोई ब्राह्मण है न कोई शूद्र ही है, सब राम के ही अंश हैं। -

'यह तत् वह तत् एक है, एक प्राण दुइ जात।

अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात॥'

जीव और ब्रह्म के अद्वैत को और स्पष्ट करने के लिए कबीर कहते है की जैसे जल से हिम बनता है और हिम भी जल में ही बदल जाता है, वैसे ही परात्मा से ही आत्मा की उत्पत्ति होती है तथा आत्मा पुनः परमात्मा में ही विलीन हो जाती है। परमात्मा सृस्टि के कण-कण में व्याप्त है तथा जीव भी उसी परमात्मा का अंश है। अतः परमात्मा हमारे अंतर में भी विद्यमान है। -

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।

फूटा कुम्भ जल जलहि सामना, यह तथ कह्यौ गयानी॥"

परमात्मा से विलग हो कर आत्मा जगत के मोह-माया में लिप्त होकर अज्ञानवश भटकती रहती है, परन्तु जैसे ही भ्रम दूर होता है, जीवात्मा सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाती है।

"झल उठी झोली जाली, खपरा फूटम फूटि।

जोगी था सो रमि गया, आसण रही विभूति॥"

*जगत - कबीर शंकर के मायावाद से प्रभावित थे। अतः इन्होंने जगत को मिथ्या माना है। जगत का कोई अस्तित्व नहीं है, माया के कारण इसकी सत्ता का आभास होता है। यह संसार क्षणभंगुर है, यहाँ सब कुछ अनित्य है।

"यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।"

*माया - कबीर के अनुसार माया ' परमब्रह्म की एक रहस्यमयी शक्ति है, जो विश्वमयी नारी के रूप में प्रकट होकर ' जीवात्माओं को विषय वासना के बंधन में फसा कर रखती है। जीवात्मा सहज ही उसकी त्रिगुणात्मक 'फाँस' में फंस कर पथ से विपथ हो जाती है।

"कबीर माया मोहिनी, जैसे मीठी खांड।"

माया सर्वत्र व्याप्त है तथा यह भाटी-भाटी से साधक को विचलित करती है। काम, क्रोध, मद, मोह और मत्सर नामक इसके पांच पुत्र है जो जीवों को तरह-तरह से सताते हैं।

माया बुद्धि को भ्रमित जीवात्मा-परमात्मा में द्वैत का ब्रम्ह उत्पन्न कर देती है। माया का प्रभाव इंतना गहरा होता है की शरीर की समाप्ति के बाद भी इसका प्रभाव समाप्त नहीं होता है।-

डॉ0 वन्दना
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–हिन्दी